नियमसार, ९३ गाथा।

टीका : यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है। पहले बात कर गये हैं। आत्मा में जो कुछ शुभ और अशुभभाव होते हैं, वह घोर संसार का मूल है। आहाहा! संसारी को कहाँ जाना? हिन्दी है? हिन्दी है? हिन्दी में लेना है। क्या कहा? – कि यह आत्मा जो है, वह देह से तो भिन्न है, कर्म से भी भिन्न है, इसकी पर्याय में; द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है, परन्तु एक समय की पर्याय में भी कर्म और शरीर नहीं है। इसकी पर्याय में पुण्य और पाप के भाव अनादि से है। ये पुण्य और पाप के भाव घोर संसार का कारण है, क्योंकि यदि इनसे भव घटते हों तो शुभ-अशुभभाव अनन्त बार किये हैं। आहाहा! और इस शुभभाव (को) ज़हर कहा है। दो बातें आ गयी हैं। आहाहा! कठिन काम है, भाई! वीतराग का धर्म अपूर्व, अलौकिक, अचिन्त्य है।

आत्मा में शुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह भी घोर संसार का कारण है, क्योंकि वह स्वयं संसार है, आहाहा! और वह शुभभाव... आत्मा अमृतसागर है, अमृतस्वरूप प्रभु है, उससे (विरुद्ध) शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह ज़हर है। सूक्ष्म बात पड़े, भाई! देवीलालजी! यह तो कठिन पड़े। क्या हो? मार्ग कोई अलग प्रकार का है, भाई! अनन्त काल से परिभ्रमण करते... करते... करते अनन्त... अनन्त... अनन्त भव किये हैं। इसकी सत्ता का – अस्तित्व का इसने विचार कहाँ किया है? कि

अभी तक मैं रहा कहाँ? मैं एक तत्त्व हूँ। अस्ति है, सत्ता है, अस्तिवाला पदार्थ है, तो अस्तिवाला रहा कहाँ? आहाहा! यह चौरासी की योनि में शुभ-अशुभभाव से रहा। शुभ-अशुभभाव, वह घोर संसार है। आहाहा! और शुभभाव; इस आत्मा अमृतस्वरूप से विरुद्ध स्वरूप -जहरस्वरूप है। कठिन पड़े, भाई! व्यवहार और बाह्य की क्रियाकाण्ड के रसिक और आग्रही; व्यवहार करते-करते धर्म होगा, धीरे-धीरे करेंगे। दया, व्रत, भक्ति, पूजा (करते-करते) धीरे-धीरे होगा—ऐसा माननेवालों को यह कठिन लगता है। मार्ग तो यह है। कठिन लगे, पचे, न पचे, परन्तु मार्ग तो यह है। यहाँ कहते हैं न? देखो!

ध्यान एक उपादेय है... आहाहा! स्वरूप-चिदानन्द प्रभु का विकल्परहित ध्यान, विकल्प की कल्पना रहित। ध्यानावली की कल्पना का आया था न? वह कल्पना भी नहीं। आया था? ध्यान-ध्येयादिक सुतप। पहले आया था। उसे सुतप कहा। ध्यान-ध्येयादिक सुतप। वह भी विकल्पवाला होने से कल्पनामात्र रम्य है। इसके पहले आया था। आहाहा! जगत को कठिन पड़ता है। क्या हो? एकदम यह मार्ग? आता है न, पहले व्यवहार करते-करते परम्परा पाक होकर निश्चय होगा। ऐसा आता है न? पीछे। वह तो एक निमित्त से कथन है। निश्चय का भान है, उसमें ऐसा व्यवहार होता है। उसकी परम्परा तोड़कर अन्दर स्थिर होता है। आहाहा! है? अन्दर आ गया है। परम्परा से निश्चय होता है। आहाहा! उसका अर्थ यह कि निमित्त का ज्ञान कराया।

यहाँ तो एक ही बात 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, वह पुण्य और पाप के विकल्प से रहित है। उस आत्मा का ध्येय बनाकर और उसका निर्विकल्प ध्यान, एक ध्यान ही उपादेय है। आहाहा! वही करनेयोग्य और आदरणीय वह एक ही है। शुभभाव आदि करनेयोग्य और आदरणीय नहीं है। आते हैं, होते हैं, परन्तु वे जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है।

यहाँ तो पहले बाँधा है कि **यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है।** अन्तर स्वरूप चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्त, पूर्ण वीतराग, पूर्ण प्रभुता आदि पूर्ण गुणों का पिण्ड प्रभु - ऐसा जो एकरूप आत्मा, उसका एक का ही ध्यान, वह आदरणीय है। उसका ध्यान एक ही आदरणीय है। परमात्मा का ध्यान, वीतराग का ध्यान, वह भी नहीं।

समाधिशतक में कहा है न? समाधिशतक में। दीपक से दीपक होता है। वृक्ष (बाँस) की रगड़ से अग्नि होती है। आता है न? आहाहा! वह तो निमित्त से कथन है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, उनका ज्ञान जिसने लक्ष्य में लिया, उसे लक्ष्य में लेकर 'मैं परमात्मा हूँ'—ऐसी दृष्टि करता है, उसे सर्वज्ञपना प्रगट होता है। और दूसरा, सीधे 'मैं सर्वज्ञ हूँ'—ऐसा ध्यान करे, उसे सर्वज्ञपना प्रगट होता है। समाधिशतक में दो बोल आते हैं न? आहाहा! लोगों को उलझन करे, ऐसी बात है।

इस प्रकार ऐसा कहा कि एक ही आत्मा जो निर्मल पूर्ण ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप वही दोरूप से परिणमता है—उपाय और उपेय। उसमें राग और व्यवहार, उपाय और उसका फल, उपोय-मोक्ष—ऐसा है नहीं। आहाहा! एक ही आत्मस्वभाव। विकार, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है। आत्मा तो अकेला चिदानन्द अनन्त गुण का पिण्ड निर्मल स्वभाव, वह अपूर्णरूप से परिणमे, वह साधक है, उपाय है, वही कारण है और पूर्णरूप से परिणमे, वह कार्य और वह उपेय है और वह उसका फल है। उसमें कहीं बीच में व्यवहार आया, वह जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। पूरे दिन पाप करना, पूरे दिन धन्धे में (रुकना), स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा, घानी की तरह पूरे दिन पाप में रुकना और उसे ऐसा कहना कि तेरा पाप तो पाप है ही... आहाहा! परन्तु कदाचित् तू दया, दान, और व्रत, भक्ति, पूजा, दान में आवे, वह भी विकार और घोर संसार का कारण है। कठिन पड़े। आहाहा! यह आ गया है न? घोर संसार का कारण और ज़हर है। आठ बोल आ गये न? प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, पंच नवकार का स्मरण और उसके आधार से अशुभ का त्याग; वह शुभभाव भी जहर है।

'प्रभु का मारग है शूरों का, ये कायर का यहाँ काम नहीं।' आहाहा! इसे किसी व्यक्ति की संख्या की कुछ जरूरत नहीं। बहुत माने तो यह सत्य कहलाये और कम माने-थोड़े माने, वह असत्य—ऐसा कुछ नहीं है। सत्य तो सत्य ही है।

एक ही आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु! आहाहा! अनाकुल शान्त वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा, अनादि-अनन्त सदा ही निर्मलानन्द प्रभु है। उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा का ध्यान, वह एक ही उपाय है, एक ही आदरणीय है। यहाँ पर्याय को उपादेय कहा। उपादेय तो वास्तविक आत्मा है, परन्तु इन आचरण के उपायों में उपाय कौन साधन है? - कि यह ध्यान, वह एक उपादेय है। आहाहा!

वैसे तो एक कारणपरमात्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु त्रिकाल कारण द्रव्यस्वभाव अनन्त गुण का धाम, अकेला अतीन्द्रिय सुख का, शान्ति का धाम, शान्ति और सुख का, अनन्त शान्ति और सुख का फल, वही आदरणीय है; परन्तु यहाँ कहते हैं कि वह आदरणीय होकर जो कुछ पर्याय में शुभाशुभ हो, वे आदरणीय नहीं हैं, ऐसा बताने के लिए ध्यान को उपादेय कहा है। आहाहा! अब यहाँ अभी चौबीस घण्टे में दो घड़ी सुनने का समय मिले नहीं, देवदर्शन करने का समय मिले नहीं, वाँचन करना-श्रवण करने का समय मिले नहीं। अब उसे ऐसा कहना कि प्रभु! मार्ग तो यह है। आहाहा! तू श्रवण कर, या भक्ति कर या पूजा कर या एक घण्टे हमेशा भगवान की भक्ति कर; तो भी वह सब शुभराग, वह जहर है। आहाहा! घोर संसार का मूल है। अर र र!

मुमुक्षु : पुण्य-पाप में भेद करे, वह भी घोर संसार का कारण?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद ही नहीं है। भेद करे, वह घोर संसार का कारण है। प्रवचनसार की ७७वीं गाथा (में कहा है)। पुण्य और पाप में भेद करे कि पुण्य ठीक और पाप अठीक। '**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' प्रवचनसार की ७७वीं गाथा। यहाँ है प्रवचनसार? '**ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो त्ति पुण्णपावाणं।**' कोई ऐसा न माने कि पुण्य-पाप में विशेष नहीं; अन्तर है - पुण्य ठीक और पाप अठीक। ऐसे पुण्य-पाप में कुछ अन्तर है—ऐसा जो माने '**ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसो**' कुछ विशेष नहीं। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ दोनों भाव में कुछ अन्तर नहीं है। आहाहा! अब ऐसा सुनना। व्यपार करना या यह धन्धा करना या यह (करना)? आहाहा! अरे, प्रभु! मार्ग बहुत अलग, भाई! भवभ्रमण रहित होने का रास्ता कोई अलौकिक है।

यहाँ कहते हैं, पुण्य-पाप में कुछ विशेष नहीं है। यहाँ परमात्मप्रकाश में कहा है। गाथा वहाँ भी है। शुभ-अशुभ दो भाव हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, ये दो भाव हैं। इन दो भावों में विशेषता माने कि पुण्य ठीक है और पाप अठीक है। दोनों समान हैं, दोनों एक जाति के घोर संसार के कारण हैं। उन्हें एक न मानकर, विशेष माने '**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' '**हिंडदि घोरमपारं संसारं**' प्रवचनसार में यह पाठ है। '**मोहसंछण्णो**' आहाहा! वह मिथ्यात्व से ढंक गया है। आहाहा! पुण्य और पाप दोनों शुभ-अशुभभाव, उनमें निश्चय से कुछ अन्तर है, ऐसा माने (अर्थात्) पुण्य

ठीक है और पाप अठीक है। '**हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो**' मिथ्यात्व से ढँका हुआ, मिथ्यात्व से आच्छादन हुआ, घोर संसार में '**हिंडदि**' अर्थात् भटकेगा। आहाहा! ऐसा काम। प्रवचनसार की ७७ गाथा है। यह कहते हैं।

(इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है। आहाहा! जितने असंख्य प्रकार के शुभ और असंख्य अशुभ, इन सबको छोड़कर एक स्वरूप का ध्यान, स्वरूप को ध्येय बनाकर ध्यान, वह ध्यान एक ही आदरणीय है। शुभ-अशुभभाव आदरणीय नहीं है। आहाहा! काँप उठे न? एकान्त ही माने न? सोनगढ़वाले एकान्त मानते हैं परन्तु यह शास्त्र क्या कहता है? आहाहा! व्यवहार से कुछ (मानते नहीं)। चरणानुयोग में व्यवहार की बात बहुत आती है। ऐसे व्रत पालना, ऐसे अतिचार पालना, उसका ऐसा करना, उसका ऐसा करना। प्रायश्चित्त लेना, परन्तु वह सब भाव शुभ है और ज़हर है, कहते हैं। आहाहा!

जो कोई परमजिनयोगीश्वर... उत्कृष्ट बात ली है न? **जो कोई परमजिनयोगीश्वर...** जिनयोगीश्वर। यह अन्यमत में नहीं होता। परमेश्वर वीतराग जैन परमेश्वर के पन्थ के अतिरिक्त कहीं सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होता। किसी पन्थ में वह नहीं है। आहाहा! इसलिए परमजिन (कहा है)। परमजिन में भी योगीश्वर। योगीश्वर मुनि लिए हैं। आहाहा! स्वरूप में जुड़ान में भी ईश्वर हैं। स्वरूप के ध्यान में ईश्वर हैं। **साधु—अति-आसन्नभव्य जीव,...** अति आसन्नभव्य जीव। अब संसार का किनारा है। किनारा आ गया है। मोक्ष सादि-अनन्त। आहाहा! संसार अनादि-सान्त, उसका सान्तपना निकट आ गया है और सादि-अनन्त मोक्ष अब नजदीक है। आहाहा! हाथ बैंत में नहीं कहते? यह बात हाथ बैंत में है। ऐसी नजदीक जिन्हें है, कहते हैं। आहाहा! जिनका आत्मा अन्दर से स्वीकार करके अन्दर स्वरूप में जुड़ान में चढ़ गया है।

परमजिनयोगीश्वर... यह परमजिन क्यों लिया है? परमजिन के अतिरिक्त कहीं दूसरा मार्ग है नहीं। जैन में भी अभी गड़बड़ उठी है। जैन सम्प्रदाय के नाम से घोटाला उठा है। यह धर्मध्यान, यह प्रतिक्रमण करो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, यह करो, इससे कल्याण होगा। आहाहा! यह सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, चौदिशंतु (करो)। समकित के बिना सामायिक कैसी? वह तो सब शुभभाव है, राग है, संसार है, घोर संसार है।

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु—अति-आसन्नभव्य जीव,... जिसे अब संसार

का एकदम अन्त आया है ऐसा, **अध्यात्मभाषा में पूर्वोक्त स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ...** आहाहा! पूर्वोक्त कहा वैसा आत्मा... आहाहा! उस आत्मा में-स्व आत्मा में; पर आत्मा में नहीं। तीर्थंकर या अरिहन्त या सिद्ध या पंच परमेष्ठी, वे पर हैं। पर के ध्यान में तो राग होता है, विकल्प होता है। आहाहा! यह तो सन्त बाहर प्रसिद्ध करते हैं। जिन्हें दुनिया की दरकार नहीं है। दिगम्बर मुनि जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! हमें भी स्मरण करने से तुझे राग (होगा) और राग, वह घोर संसार का कारण है। यह तो दिगम्बर सन्त कहते हैं। आहाहा!

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ... स्वात्माश्रित, देखा? धर्मध्यान। वह निश्चयधर्मध्यान। व्यवहार से शुभभाव आया था। यह निश्चयधर्मध्यान (की बात है)। आहाहा! ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान है। उसमें जिसका आश्रय है, आत्मा का आश्रय है। राग और पुण्य और विकल्प का आश्रय छोड़ दिया है। जिसे निश्चय स्व-आत्मा आश्रय **निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ...** आहाहा! अन्तर आत्मा में शुद्ध में-पवित्र में। पूरा आत्मा पवित्र का पिण्ड है। विकार और संसार है, वह तो एक समय की पर्याय ऊपर विकार है। वह ऊपर-ऊपर है। वह द्रव्यस्वभाव में है नहीं। द्रव्यस्वभाव तो परमात्मा पूर्ण है। वहाँ अपूर्णता और विपरीतता जरा भी नहीं है। ऐसा जो स्वात्माश्रित धर्मध्यान। आहाहा!

निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ अभेदरूप से स्थित रहता है,... आहाहा! उस स्वरूप में अभेदरूप। ध्याता, ध्यान और ध्येय - ऐसे भेद के विकल्प को भी नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात है। **अभेदरूप से...** चिदानन्द चिद्घन प्रभु, चैतन्य के प्रकाश का पूर, नूर ध्रुव में अभेदरूप से स्थिर रहा हुआ। जिसमें भेद भी नहीं कि मैं ध्यान करता हूँ और यह ध्याता हूँ। आत्मा ध्याता है और ध्यान करनेयोग्य है, यह भेद जिसमें नहीं। आहाहा! कठिन पड़े। गृहस्थाश्रम के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं होगा? मार्ग है, वह हल्का आत्मा का आश्रय लेता है। मुनि हैं, वे उग्ररूप से आश्रय लेते हैं। इतना अन्तर है। बाकी आत्मा के आश्रय का दोनों का मार्ग तो एक ही है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित... आहाहा! सकल क्रियाकाण्ड। ऐसे भक्ति करना, ऐसे पूजा करना, यह व्रत करना, यह

करना, वह करना – ऐसे जो विकल्प / राग हैं, उन सकल क्रियाकाण्ड से रहित। आहाहा! **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर...** उन्हें आडम्बर कहा। आहाहा! बाहर में दिखाव। दस-दस लाख खर्च करे, गजरथ निकाले, बड़े हाथी के रथ निकाले और लाखों लोग इकट्ठे हों। लो! बाहुबलीजी में हजार वर्ष का है न और लाखों लोग इकट्ठे होंगे। और हो-हा, हो-हा, पानी से अभिषेक करेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे, बोली करेंगे। फिर पाँच-दस -बीस लाख इकट्ठे करेंगे। यह सब बातें बाहर की हैं, ये धर्म नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात है, भाई! बात झेलना कठिन है। बाहर में इतने उलझ गये हैं। राग और द्वेष और विकार-मिथ्यात्व में इतने गहरे फँस गये हैं। उनसे यह रहित सुनने की बात कठिन पड़े ऐसी है।

अकेला **अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित...** यह क्रियाकाण्ड, वह आडम्बर है। आहाहा! यह व्रत पालन किये, क्रियाएँ कीं, दस अपवास किये, चतुर्विध आहार (त्याग) अपवास किये, शोभायात्रा निकाली और दस-दस उपवास में घर-घर में २५-२५, ५०-५० रुपये की प्रभावना की। हजार घर हों तो पाँच हजार (खर्च करे)। यह सब बातें बाहर की हैं, बापू! आहाहा! ये सब क्रिया तो पर की है परन्तु कदाचित् उसमें भाव होता होवे तो शुभभाव है। जिस शुभभाव को यहाँ घोर संसार का मूल कहा। आहाहा! कठिन लगे। वाड़ा में तो रहने न दे। वाड़ा में ऐसी बात! आहाहा!

मुमुक्षु : वाड़ावाले यहाँ आते हैं। वाड़ा तोड़कर आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं न बेचारे। उसे छोड़कर, आग्रह छोड़कर आते हैं। वाड़ा के आग्रही होवें वे कहें, नहीं... नहीं... छोड़ दो.. छोड़ दो.. कहा न? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है, (ऐसा हमने) कहा, वह अधर्म है। (संवत्) १९८५ के वर्ष में, पौष महीना, बोटाद में हजारों लोग व्याख्यान में थे। उपाश्रय में समाते नहीं थे। पीछे गली भर जाती थी। बहुत लोग। तीन सौ घर। सब लोग सुनने आवे। उसमें यह बात आयी कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है; अधर्म है। हाय.. हाय.. काँप उठे। और पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं। आहाहा! वह धर्म नहीं, संवर नहीं। सभा तो सुनती थी। बहुत लोग थे। पूरी सभा भरी थे। सेठ, गृहस्थ सब

५०-५० हजार की आमदनीवाले सेठ। तब... तब... कितने वर्ष हुए? ५१ वर्ष पहले की बात है। 'कानजीस्वामी' व्याख्यान पढ़ने बैठे हैं, इसलिए लोग समाते नहीं। चींटी की तरह भर जाते हैं। यह बात आयी, वहाँ लोग कुछ नहीं बोले परन्तु एक साधु बैठे थे, वे कहने लगे वोसरे... वोसरे—यह हमारे नहीं चाहिए। यह बात चाहिए (नहीं), यह चाहिए (नहीं)। वोसरे (का अर्थ) समझ में आया? आहाहा! यह बात हमें सुनना नहीं चाहिए, श्रद्धा नहीं करना चाहिए। बड़ी सभा थी। मैं समझा था कि यह बोलता है। फिर मैंने कहा, तुम्हें मौन रहना था न! नहीं मानना था। तुम्हारा सभा में किसने सुना? सभा में मान था, तब कहा। सम्प्रदाय में भी मान था। जहाँ जाएँ वहाँ हजारों लोग (आवें)। १९७४ के वर्ष से। ६१-६२ वर्ष हुए। सभा भरती, सम्प्रदाय में थे न, मुँहपत्ती, रजोणु अपने महाराज हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **क्रियाकाण्ड के आडम्बररहित...** एक बात। क्या? ध्यान। आत्मा आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। अतीन्द्रिय वीतरागस्वरूप है, ऐसा जो आत्मा अन्दर है, उसे **क्रियाकाण्ड के आडम्बररहित...** ध्यान। क्रियाकाण्ड का ध्यान, वह ध्यान नहीं है, वह तो राग है, आर्तध्यान है। आहाहा! **और व्यवहारनयात्मक भेदकरण...** आहाहा! है? **भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना वह। [समस्त भेदकरण—ध्यान-ध्येय के विकल्प भी व्यवहारनयस्वरूप है।]** ऐसा आत्मा का ध्यान करूँ, ध्याता आत्मा, ध्यान—ऐसे भेद करना, ऐसा विकल्प राग उठे, वह भी दुःखदायक है, कल्पनामात्र है। आहाहा! बहुत कठिन बातें, बापू! आहाहा!

विकल्परहित.. आडम्बररहित, विकल्परहित, व्यवहारनय के भेदरहित और **समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर...** पाँचों इन्द्रियाँ और मन से अगम्य ऐसा भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! पाँचों इन्द्रियाँ और मन से अन्दर (आत्मा) भिन्न है। चैतन्यसत्ता आत्मतत्त्व अनन्त गुण का पिण्ड, वह इन्द्रियों से अगोचर है। इन्द्रियों से गम्य नहीं, इन्द्रियों से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। यह सुनकर इन्द्रिय से ज्ञात हो, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! आया या नहीं इसमें इन्द्रिय? इन्द्रिय से सुना और सुनने से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी कठिन काम, भाई!

किसे पड़ी है? आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकने के कारण कहीं... आहाहा! बड़ा व्यक्ति, करोड़ाधिपति, अरबोंपति हो, मरकर सुअर जाए। आहाहा! छिपकली की

कूँख में अवतरित हो। आहाहा! ऐसा संसार है। घोर संसार का आर्तध्यान। उसमें से सुगति, पुण्य, दो-चार-पाँच घण्टे शुभभाव करना, वाँचन (करना), वह समय कहाँ है? एकाध घण्टा मिले तो कर आवे कहीं सामायिक या भक्ति और या पूजा (करे), उसमें जरा कोई शुभभाव होवे। बाकी तेईस घण्टे का आर्तध्यान। ऐरण की चोरी और सुई का दान। आहाहा! उसका पुण्य भी कहाँ है? आहाहा! बहुत कठिन काम है, बापू! वीतराग तो जैसा सत्य हो, वैसा कहते हैं। उन्हें दुनिया की कुछ पड़ी नहीं है। ओहोहो!

कहते हैं **ध्यान-ध्येय के विकल्परहित, समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर ऐसा जो परम तत्त्व...** परम तत्त्व। भगवान आत्मा परम चैतन्य हीरा अन्दर है। चैतन्य हीरा अन्दर अनन्त गुण की खान है, जिसमें अनन्त हीरा-गुण भरे हैं। आहाहा! कैसे जँचे? लाख-दो लाख का एक मणिरत्न जहाँ मिल जाए, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! यह तो अनन्त-अनन्त गुण के मणिरत्न से भरपूर भगवान है। एक-एक आत्मा ऐसा भरपूर भगवान है, ऐसा परमात्मा ने फरमाया है। उसके सन्मुख देखने की तुझे फुरसत नहीं है। आहाहा! और पामर के सामने देखने में तल्लीन हो गया है। प्रभु के सामने देखता नहीं और पामर के सामने तल्लीन हो गया है। आहाहा!

इन्द्रियसमूह से अगोचर ऐसा जो परम तत्त्व—शुद्ध अन्तःतत्त्व,... देखा? इसका अर्थ किया? **शुद्ध अन्तःतत्त्व,...** अन्तःतत्त्व आत्मा परमात्मस्वरूप आनन्दकन्द, शान्त की मूर्ति, अविचल ज्ञान, अविचल आनन्द, अविचल वीतरागता, ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर भगवान-ऐसा परम तत्त्व, अन्तःतत्त्व **तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से निरपेक्ष...** ऐसा **शुद्ध अन्तःतत्त्व, तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से निरपेक्ष...** आहाहा! उसमें भेद भी नहीं। शुक्लध्यान लेना है न? **निरपेक्ष=उदासीन; निस्पृह; अपेक्षारहित। [निश्चयशुक्लध्यान शुद्ध अन्तःतत्त्व सम्बन्धी भेदों की कल्पना से भी निरपेक्ष है।]** ऐसे **निश्चयशुक्ल-ध्यानस्वरूप...** आहाहा! **स्थित रहता है,...** आहाहा! पंचम काल में भी सन्त ऐसा उपदेश करते हैं। ध्येय ऊँचा है न! ऐसे शुक्लध्यान में स्थित रहते हैं। स्वयं को उग्ररूप से भले धर्मध्यान है, परन्तु अन्दर शुक्लध्यान में आगे बढ़ने का ध्येय है। आहाहा! पंचम काल में शुक्लध्यान का अभाव (होने) पर भी शुक्लध्यान में स्थित रहे, ऐसी भावना बतलाते हैं। आहाहा!

वह (साधु) निरवशेषरूप से... कुछ बाकी रखे बिना **अन्तर्मुख होने से...** अन्तर्मुख

में कुछ भी बाकी भेदकल्पना, विकल्प से बाकी रखे बिना... आहाहा! ऐसा जो भगवान अन्दर विराजता है, परम अतीन्द्रिय आनन्द का (नाथ) प्रभु, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर विराजता है। कैसे जँचे? पूरे दिन आत्मा.. आत्मा.. आत्मा के साथ ही बातें करना, उसे भूलकर यह पर के साथ बातें करना, वह किस प्रकार जँचे? आहाहा! ऐसा जो आत्मा अन्दर अनन्त-अनन्त गुण के रत्न का हीरा भरपूर है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। सिद्ध का स्वरूप है, वैसा इस आत्मा का स्वरूप अन्दर है। आहाहा!

उसमें **स्थित रहता है, वह (साधु) निरवशेषरूप से अन्तर्मुख होने से...** वे साधु पर की कुछ भी अपेक्षा रखे बिना **अन्तर्मुख होने से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है;...** आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह...** प्रशस्त अर्थात् शुभराग। मोह-शुभ मोह, अशुभ मोह का सर्वथा त्याग करते हैं। आहाहा! इसकी दृष्टि में तो पहले यह बात बैठनी चाहिए कि यह इस प्रकार हो, तब उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। ऐसा दृष्टि में तो इसे पहले बैठना चाहिए। आहाहा!

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है;... परित्याग करता है, ऐसा कहा। परि—समस्त प्रकार से अन्दर छोड़ता है। आहाहा! अन्तर आनन्द का सागर भगवान डोलता है, उसमें लीन होता है। आहाहा!

इसलिए (ऐसा सिद्ध हुआ कि) स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान... स्व आत्मा के आश्रय से निश्चयधर्मध्यान। **और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है।** लो, सब पापों का, अतिचारों का प्रतिक्रमण यह ध्यान है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। आहाहा! कठिन बात। अभी व्यवहार का ठिकाना नहीं होता, व्यवहार की निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धे के कारण पूरे दिन पाप। सवेरे से दुकान खोलकर ऐई... बराबर साफ करके ध्यान रखे, ग्राहक को देखे, कौन आया और कौन आता है? क्या आता है? आहाहा! अब इसे यह आत्मा ऐसा, कब बैठे? और जन्म-मरण कब टले? परिभ्रमण-चार गति के दुःख... आहाहा! उन्हें मिटाने का उपाय यह एक है।

निश्चय **स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही...** दो ध्यान ही। इसके अतिरिक्त कोई बात नहीं। अन्दर.. आहाहा! अन्दर... शुभराग का विकल्प (उठे) वह भी नहीं। **सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण...** सब पापों का

प्रतिक्रमण यह (आत्माश्रित ध्यान) है। अन्तर में ध्यान में स्थिर हो जाना, वह सब पापों का -अतिचारों का त्याग है। वहाँ पाप का त्याग हो जाता है। आहाहा! बाहर से पाप का त्याग करके बैठा, वह धर्म है नहीं। आहाहा! हिंसा नहीं की, झूठ नहीं बोला, बाहर में शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, वह कोई वस्तु नहीं। आहाहा! कठिन काम। सुनना कठिन पड़े। यह वे वीतराग ऐसा कहते होंगे? जैन परमेश्वर, वीतराग जैन परमेश्वर ने ऐसा कहा, उसे सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! **दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है।**

श्लोक-१२४

[अब इस ९३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]:—

(अनुष्टुप्)

शुक्लध्यानप्रदीपोऽयं यस्य चित्तालये बभौ।
स योगी तस्य शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति स्वयम्।।१२४।।

(हरिगीतिका)

जिस मनोमन्दिर में प्रकाशित शुक्लध्यान प्रदीप यह।
योगी वही, शुद्धात्मा उसको स्वयं प्रत्यक्ष है॥१२४॥

[श्लोकार्थः] शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ, वह योगी है; उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है॥१२४॥

श्लोक-१२४ पर प्रवचन

[अब इस ९३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]:—

शुक्लध्यानप्रदीपोऽयं यस्य चित्तालये बभौ।
स योगी तस्य शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति स्वयम्।।१२४।।

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, ९०० वर्ष पहले हुए। वे यह बात करते हैं। भगवान की कही हुई यह बात है। यह नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, (कि) मैंने मेरे लिए बनाया है। यह नियमसार तो मैंने मेरे लिए बनाया है। तुम सुनो और समझो, बाकी मैंने तो मेरे आत्मा के लिए बनाया है। आहाहा!

[श्लोकार्थः] शुक्लध्यानरूपी दीपक... शुक्लध्यान लिया। देखा? उत्कृष्ट। **जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ,... शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ, वह योगी है;...** आहाहा! वह योगी। परन्तु अन्यमति का योगी नहीं, हों! भगवान ने जो आत्मा का आनन्दस्वरूप कहा, उसमें योगी अर्थात् जुड़ जाता है, वह योगी। योग अर्थात् उसमें जुड़ जाए तो योगी। योगी अर्थात् वे बाबा योगी होते हैं, वह नहीं। वह तो सब अज्ञानी को कुछ भान नहीं होता। आहाहा! ऐसे **वह योगी है; उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है।** आहाहा! पंचम काल के मुनि यह बात जोर से करते हैं। जिन्हें दुनिया की पड़ी नहीं है। ऐसी बात करने से समाज सुगठित रहेगी या नहीं? साधारण प्राणी इसे कैसे स्वीकार करेंगे? आहाहा! उछलक हो जाएँगे। आहाहा! होओ, दुनिया तो उछलक अनादि से अज्ञान से पड़ी ही है। अज्ञान में भटकाये हैं। आहाहा!

ऐसे जो **शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ, वह योगी है;...** आहाहा! **उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है।** शुद्ध आत्मा प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! उसे शुद्ध आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन होता है। अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का वेदन होता है। वह प्रत्यक्ष है। कोई विकल्प और राग तथा मन का आश्रय वहाँ नहीं है। आहाहा! कल था, वैसा आज आया। ऐसी बात है। आहाहा!

ऐसे मुनि को **शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है।** तब कोई कहे, इतनी अधिक बड़ी बात करे, (वह) हमसे नहीं हो सकती। (तो उससे कहते हैं) परन्तु पहले प्रतीति तो कर। श्रद्धा तो कर कि मार्ग यह है, इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। आहाहा! अन्दर स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन प्रकाश चैतन्य की चमत्कारी मूर्ति पड़ी है। ऐसा जो वीतरागस्वरूप, उसके ध्यान में रहे... आहाहा! उसे **शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है।** उसे अन्दर स्वयं प्रत्यक्ष

होता है। प्रत्यक्ष आत्मा, इसलिए पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। उसे परोक्ष होता नहीं। देखा? केवलज्ञान के पहले शुद्धध्यान ने प्रत्यक्ष होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी यहाँ नीचे धर्मध्यान में प्रतीति कराते हैं। आहाहा! ऐसा कहते हैं, तू उलझ नहीं। ऐसी वस्तु हो सकती है। शुक्लध्यान ऐसी स्थिति है और ऐसा हो सकता है, ऐसा प्रतीति में ला, प्रतीति में ला और स्व का आश्रय कर। इसके बिना दूसरा कोई उपाय तिरने का है नहीं।

चौरासी के अवतार में से निकलने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। बाकी अनन्त काल से परिभ्रमण में कचूमर निकल गया है। जैस तिल को घाणी में पेले, वैसे चौरासी के अवतार में पिल गया है। आहाहा! एक के बाद एक, एक के बाद एक मरा, वहाँ अन्यत्र अवतरित हो। निगोद में तो एक श्वास में अठारह भव। आहाहा! कैसे होंगे? वहाँ क्या हुआ होगा? एक श्वास में अठारह भव करे। यह लहसुन, प्याज, बटाटा-आलू नहीं कहते अभी। मूली का कान्दा, आलू में जरा यह प्रश्न उठता है। कोई प्रत्यक्ष कहे वह प्रश्न उठा है परन्तु यह लहसुन, एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव और एक-एक जीव अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त आनन्द का स्वामी है। आहाहा! कैसे जँचे? बाहर बड़ा वैभव हो, वह जँचे कि इसे पचास लाख मिले, करोड़ मिले, पाँच करोड़ मिले, धूल मिली, राजा हुआ, रूपवान शरीर मिला, दस-पच्चीस रानियाँ मिली, लड़के पचास हुए, वे सब कमाऊ हुए, पच्चीस-पचास लाख के आसामी कमाऊ-कमाऊ। जगत को यह सब पाप की चमक जँचती है। आहाहा! यह अन्दर के चमक की बात नहीं जँचती। इसे जँचाने के लिए यह बात करते हैं। भले शुक्लध्यान (अभी) होता नहीं। आहाहा!

शुक्लध्यान की दशा ऐसी होती है, जिसमें आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! स्वयं प्रत्यक्ष होता है, ऐसी प्रतीति तो कर, श्रद्धा में तो ले। न हो सके, ऐसा न मान। ऐसा नहीं हो सकता और ऐसा नहीं हो सकेगा, ऐसा मत मान। आहाहा! है? **शुद्ध आत्मा स्वयं...** स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)